International Journal For Applied Research in Science and Engineering
Volume 2, Issue 3, March-2019 *ISSN (Online): 2456-124X*

श्रीमद्भागवत् में निहित शैक्षिक विचारों की समीक्षा एंव उसके निहितार्थ

डॉ. पूनम अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
धर्मसमाज कॉलेज, अलीगढ़

1. अध्ययन का महत्व

राष्ट्रीय शिक्षा तथा संस्कृति में सम्बन्ध होता है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–52), शिक्षा आयोग (1964–66) एंव समस्त प्रबृद्व भारतीय शिक्षा–विषेशज्ञों की मान्यता है। कि जर्मनी, अमेरिका, फ्रान्स रुस, इंग्लैण्ड आदि विकसित देशों में अपनी–अपनी राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणलियाँ प्रचलित हैं, लेकिन भारत जैसे महान् एंव प्राचीन देश के पास अपनी स्वंय की राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली की सर्वोपरि मौलिक विशेषता यही है। कि वह राष्ट्र की धरती में जन्में सर्वमान्रू युगानुरुप जीवमुल्यों होती है, यद्यपि उसका द्वार बाहरी जीवन मुल्यों के लिए सदा खुला रहता है। यह एक सर्वमान्य सार्वभौमिक रुप से सत्य है। कि राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली ही भावी राष्ट्र–निर्माताओं के चरित्र–निर्माण एंव राष्ट्रीय पुननिर्माण के लिए अनुप्राणित कर सकती है।

उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकाला जाना उचित न होगा कि भारत जैसे प्राचीन एंव महान् देश में राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली कभी थी ही नहीं। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली का उद्भव ही विश्व में सर्वप्रथम वैदिक काल में हुआ था। बौद्व काल में उस राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली में संबोधन एंव परिवर्तन अवश्य हुआ लेकिन वह शिक्षा–प्रणाली देशभक्त,वीर एंव विद्वान राष्ट्रजनों का निर्माण करने में सदैव सक्षम रही है। प्राचीनकाल की उस भारतीय शिक्षा–प्रणाली के अनुपम एंव अवर्णनीय योगदान से भारतीय इतिहास का एक–एक पन्ना प्रमाण है। मध्यकाल में परम्परागत भारतीय शिक्षा–प्रणाली के समानान्तर एक मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली भी असितत्व में आयी, किन्तु उस शिक्षा–प्रणाली ने परम्परागत भारतीय (राष्ट्रीय) शिक्षा–प्रणाली को उन्मूलित करने का प्रयास नहीं किया।`

प्राचीन भारतीय शिक्षा–प्रणाली और मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली दोनों को उन्मूलित करने का कार्य आधुनिक काल में ब्रिटिश भाासन के आंग्ल शासन और विदेशी शिक्षा–प्रणाली ने आरम्भ किया। सन् 1600ई. में भारत में इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। सन् 1614–1813 ई. तक ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा के माध्यम से इेसाईसत का प्रचार–प्रचार करने को प्रयास किया। सन् 1813 में कम्पनी के चार्टर

 Copyright 2019.All rights reserved.

में एक शैक्षिक धारा को शमिल किया गया जिसके माध्यम से गर्वनर जनरल इन–काउंसिल को यह अणिकारी दिया गया कि वह भारत में क्षेत्रों के निवासियों की शिक्षा व्यवस्था पर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये खर्च करे। इस प्रकार सन् 1813 में कम्पनी ने भारतीय की शिक्षा–व्यवस्था को उत्तरदायित्व रुप में स्वीकार किया। सन् 1835 ई. में लार्ड मैकाले ने ब्रिटिश कालीन शिक्षा–नीति को निर्धारण किया और सन् 1854 में वुड के घोशणा–पत्र ने भारत भूमि पर सर्वप्रथम ब्रिटिश कालीन विदेशी शिक्षा–प्रणाली को बीजारोपण किया। ब्रिटिश शासन द्वारा आरोपित उस विदेशी शिक्षा–प्रणाली के तीन मुख्य उद्देश्य थे–

1. अंगेजी के माध्यम से भारत में पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान का प्रचार एंव प्रचार करना।
2. हिन्दुओं का ईसाईकरण करना।
3. शासन के संचालन में विदेशी शासकों की लिए क्लर्कों एंव चपरासियों का उत्पादन करना, जो शरीर से भले ही हिन्दुस्तानी हों लेकिन वेषभूषा, रहनसहन, बोलचाल एंव सर्वथा अंगेज जैसे लगते हों।

लार्ड मैकाले और वुड दोनों अपने–अपने उद्देश्यों में सफल हुए। यह सत्य है कि भारत सन् 1947 में राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो चुका था और अंगेज भारत से भाग चुके हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि सन् 1947 में जो भारतवासियों को स्वतन्त्रता मिली, वह केवल भौतिक स्वतन्त्रता ही थी। वह वास्तवविक रुप में देखा जाये तो सांस्कृतिक न थी क्योंकि मानसिक रुप से आज भी भारतवासी अंगेजी भाषा एंव सभ्यता के दास बने हुए है। इसी मानसिक दासता के कारण स्वतन्त्र भारत शासक भारतीय शिक्षा व्यवस्था को भारतीयकरण (राष्ट्रीयकरण) करने में असफल रहें हैं,। फलत ब्रिटिस शासन द्वारा आरोपित विदेश शिक्षा–प्रणाली भारत में आज तक पूर्ववत चालू है। यद्यपि वह भी पूर्णतः विकुत हो चुकी है। और शिक्षा का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता चला जा रहा है। अतः प्रचलित विदेशी शिक्षा–प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली की स्थापना किया जान भारतीयों की सर्वधिक महत्वपूर्ण शैक्षिक आवश्यकता है।

जिस प्रकार प्रारम्भ में कहा चुका है। कि राष्ट्रीय अथवा भारतीय शिक्षा–प्रणाली सर्वमान्य एंव युगोपयोगी जीवमूल्यों पर आधरित होगी। ऐसे जीवनमूल्यों के लिए हमें भारतीय और बाहरी दोनों स्रोतों का अवगाहन करना होगा सर्वविदित है। कि वे जीवनमूल्यों हमारे विशाल वाड्.मय में संचित हैं। शिक्षा क्षेत्र के अनुसन्धाताओं का कर्तव्य है कि वे अपने विशाल भारतीय वाड्.मय का अवगाहन करके राष्ट्रीय

 Copyright 2019.All rights reserved.

जीवनमूल्यों का चयन एंव वर्गीकरण करें और युगोपयोगी जीवनमूल्यों के आधार पर शिक्षा के उद्देश यों को निर्धारण करें लेकिन भारतीय वाड्.मय तो अनमोल मोतियों से भरे एक महासागर के समान है। जिसका अवगाहन कोई एक शोधकर्ता नहीं कर सकता। तथापि एकल शोधकर्ता उस वाड.मय के किसी विशेष कालखण्ड के किसी द्वारा निरुपित जीवनमूलयों का अध्ययन अवश्य कर सकता है। महर्शि व्यास दार्शनिकों में से एक है। ''श्रीमद्भाव्त उनका विश्वविख्यात ग्रन्थ है।'' श्रीमद्भागव्त एक धर्मग्रन्थ ही नहीं है। अपित दर्शन एंव शिक्षा का अद्वितीय स्रोत भी है। राष्ट्रीय जीवनमूल्यों एंव शैक्षिक सिद्वान्तों का जैसे निरुपण ''श्रीमद्भागव्त'' में हुआ है, वैसा निरुपण सम्भवतः अन्य किसी ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलता।

आज के शिक्षा जगत में जिन– तत्तवमींमांस, ज्ञानमीमांसा का विशेष अध्ययन गहराई से करने की उत्सुकता दिखाई देती है, उसका विस्तृत वर्णन हमें श्रीमद्भागवत् के हर कोने में दृश्टिगोचर होता है। शिक्षा के क्षेत्र में मानव–निर्माण ही सर्वप्रमुख है श्रीमद्भागवत् यह मानता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता जाने बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं अपितु असम्भव है। सम्पूर्ण अस्तित्व के पीछे एक अद्वितीय भाक्ति कार्य कर रहा है। उसके वर्णन में श्रीमद्भागवत् विशेष निमग्न दिखाई देता है।

तत्वमीमांसा

1. ईश्वर

जो इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय निमित्त–कारण और उपादान–कारण दोनों ही है। बनने वाला भी और बनाने वाला भी– परन्तु स्वंय कारण रहित है। जो स्वप्न और सुशुप्ति अवस्थाओं में उसके साक्षी के रुप में विद्यमान रहता है। और उनके अतिरिक्त समाधि में भी ज्यों का ज्यों एकरस रहता है। जिसकी सत्त से ही सप्तावान् होकर शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तः करण अपना–अपना काम करने में समर्थ होतें है। उसी परमसत्य को ''नारायण'' समझिये।

उसी परमतत्व को निर्माण क्रिया से सम्बन्ध जानकर ब्रह्मा भी कहा गया है–

जब सृष्टि नहीं थी, तब केवल वही था निरुपण करने के लिए उसी को त्रिगुण (सत्य–रज–तम) मयी प्रकृति कहकर वर्णन किया गया फिर उसी को ज्ञानप्रधान उपाधि होने से अहंकार के रुप में वर्णन किया गया। वास्तव में जितनी भी शक्तियाँ हैं।– चाहें वे इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के रुप में हो, चाहे इन्द्रियों के, उनके विषयों के अथवा विषयों के प्रकार के रुप में हो– सबका–सब वह ब्रह्मा ही है। क्योंकि ब्रह्मा की शक्ति अनन्त हैं कहाँ? जो

 Copyright 2019.All rights reserved.

दृश्य–अदृश्य, कार्यकारण और असत्य है – सब कुछ ब्रह्मा है।, इससे परे जो कुछ है,, वह भी ब्रह्मा ही है।

परम शक्ति की विकृति आत्मरुप में स्वीकारी गई है। व्यक्गित आत्माओं का समषटिरुपक ज्ञान ही आवश्यक माना गया है। आत्मरुप की चर्चा बड़ी विशद रुप से श्रीमद्भागवत् में दिखाई देता है। साथ ही दूसरी ओर भी ध्यान आकर्षित किया जाता है कि परमतत्व ही मूलरुप में स्थित है–

वह ब्रह्मास्वरुप आत्मा न तो कभी जन्म लेता है। न मरता है। वह न तो बढ़ता है न घटना है, जितने भी अपरिवर्तनशील पदार्थ हैं। चाहे वे क्रिया, संकल्व और उनके अभाव के रुप में ही क्यों न हों– सबकी भूत, भविष्य् और वर्तमान सत्ता का वह साक्षी है सबमें है। देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न है., अविनाशी है। वह उपलब्धि करने वाला अथवा उपलब्धि का विषय नहीं है। केवल उपलब्धिस्वरूप–ज्ञानस्वरूप है। जैसे प्राण तो एक ही रहता है, परनतु स्थान भेद से उसके अनेक नाम हो जाते हैं, वैसे ही ज्ञान एक होने पर भी इन्द्रियों के सहयोग से उसमें अनेकता की कल्पना हो जाती है।

परमशक्ति न तो कभी जन्म लेती है, और ना ही कभी नष्ट होती है अर्थात् वह अजर–अमर रूप में रहकर दुनिया को नियंत्रित करती रहती है, उसको विभिन्न नामों के रूप में जाना जाता है।

2. जीव

जीव तो एक ही है। वह व्यवहार के लिए ही मेरे अंश के रूप में कल्पित हुआ है, परन्तु मेरा स्वरूप ही है। आत्मज्ञान से सम्पन्न होने पर उसे मुक्त कहते हैं और आत्मा का ज्ञान न होने से बद्ध। और वह अज्ञान अनादि होने से बन्धन भी अनादि कहलाता है।

परमशक्ति और जीवन या आत्मा की अभिन्नता को अनेक प्रकार से यहाँ समझाया गया है –

पच्चीस तत्व मानने वाले कहते हैं कि इस शरीर में जीव और ईश्वर का अणुमात्र भी अन्तर या भेद नहीं है, इसलिए उसमें भेद की कल्पना व्यर्थ है। रही ज्ञान की बात, सो तो सत्तवत्मिका प्रकृत का गुण है।

परमशक्ति ईश्वर, उसका व्यष्टिगत रूप आत्मा–अनके अतिरिक्त प्रकृति की विशेष भूमिका मानी जाती है। प्रकृति की त्रिगुणात्मिकता इस रूप में अभिव्यंजित है।

 Copyright 2019.All rights reserved.

3. प्रकृति

तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है, इसलिए सत्व, रज आदि गुण आत्मा के नहीं, प्रकृति के ही हैं। इनहीं के द्वारा जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय हुआ करते हैं। इसलिए ज्ञान, आत्मा का गुण नहीं, प्रकृति का ही गुण सिद्ध होता है।

सृष्टि निर्माण में ईश्वर व आत्मा से अतिरिक्त प्रकृति की विशेष भूमिका मानी गई है। विविध रूपों में यही परिणत दीखिती हैं। पुरूष साक्षी रूप माना गया है–

सृष्टि के आरम्भ में कार्य (ग्यारह इन्द्रिय और पंचभूत और कारण महतत्व आदि) के रूप में प्रकृति ही रहती है। वही सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की सहायता से जगत् स्थिति, उत्पत्ति और संसार सम्बन्धी अवस्थायें धारण करती हैं। अव्यक्त पुरूष तो प्रकृति और उसकी अवस्थाओं का केवल साक्षीमात्र बना रहता है।

सृष्टि की निर्मित में माया नामक भक्ति के विशेष योगदान का उपक्रम माना जाता है। यह परमशक्ति के एक अंश के रूप में स्थित हुई, सृष्टि के निर्माण में सहायिका की भूमिका के रूप में उपस्थित रहती है।

4. माया

भगवान् की माया स्वरूपतः अनिवर्चनीय है, इसलिए उसके कार्यों के द्वारा उसका निरूपण होता है। आदि–पुरूष परमात्मा जिस भाक्ति से सम्पूर्ण भूतों के कारण बनते हैं और उनके विषय–भोग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासकों की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पंचभूतों के द्वारा नाना प्रकार के देव, मनुष्य आदि शरीरों की सृष्टि करते हैं, उसी को माया कहते हैं।

जीव सकाम कर्मों के शुभ व अशुभ फल प्राप्त करता हुआ माया के प्रभाव से संसार चक्र में अर्थात् माया के महाजाल में फंसा रहता है –

अब वह कमेन्द्रियों से सकाम कर्म करता है और उनके अनुसार शुभ कर्म का फल सुख और अशुभ कर्म का फल दुःख भोग करने लगता है और शरीरधारी होकर इस संसार में भटकने लगता है, यह भगवान् की माया है।

ज्ञानमीमांसा

1. ज्ञान का स्वरूप

संसार की नश्वरता का ध्यान हर प्राणी को अंहकारहीनता के लिए रखना आवश्यक है। संसार

 Copyright 2019.All rights reserved.

की नश्वरता को बड़ी आकर्षित विधि से समझाया गया है–

आध्यामित्क, आधिदैविक और आधिभौतिक– इन तीन विकारों की समष्टि ही शरीर है और वह सर्वथा तुम्हारे आश्रित है। यह पहले नहीं था और अन्त में नहीं रहेगा, केवल बीच में ही दीख रहा है। इसीलिए इसे जादू के समान माया ही समझनी चाहिए, इसके जो जन्मना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट होना ये छः भावविकार हैं, इनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यही नहीं, ये विकार उसके भी नहीं हैं, क्योंकि वह स्वयं असत् है। असत् वस्तु तो पहले नहीं थी, बाद में नहीं रहेगी, इसलिए बीच में भी उसका कोई अस्तित्व नहीं होगा।

आत्म–समर्पण की विधि से अर्थात् सबकुछ के रूप में परमशक्ति की स्वीकृति के द्वारा सम्पूर्ण अस्तित्व के अनुभव की बात श्रीकृष्ण के मुख से श्रीमद्भागवत् में कहलवाया गया है।

2. ज्ञान की विधियाँ

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– उद्धवजी! जिसने उपनिशदादि शास्त्रों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, जो श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ है, जिसका निश्चय केवल युक्तियों और अनुमानों पर निर्भर नहीं करता, दूसरे शब्दों में जो केवल परोक्षज्ञानी नहीं है, वह यह जानकर कि सम्पूर्ण द्वैत प्रपंच और इसकी निवृक्तित का साधन विज्ञान मायामात्र है, उन्हें मुझमें लीन कर दें, वे दोनों ही मुझे आत्मा में अध्यस्त हैं, ऐसा जान लें।

ज्ञान प्राप्ति के माध्यम के रूप स्वयं श्रीमद्भागवत् में श्रीमद्भागवत् की महत्ता इस रूप में प्रकटित है –

श्रीमद्भागवत् के निरन्तर सेवन से अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्रकीर्जि भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति स्थायी प्रेम की प्राप्ति होती है, जब रजोगुण और तमोगुण भाव–काम और लोभादि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्वगुण में स्थित एवं निर्मल हो जाता है। इस प्रकार संसार भगवान् की प्रेममयी भक्ति से जब संसार की समस्त की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं व हृदय आनन्द से भर जाता है, तब भगवान् के तत्व का अनुभव अपने–आप हो जाता है, हृदय में आत्मस्वरूप भगवान् का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है, इसी से बुद्धिमान् लोग नित्य निरन्तर बड़े आनन्द से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसाद की प्राप्ति होती है।

 Copyright 2019.All rights reserved.

भागवत् में आदर्श मानव की संकल्पना की विधि विशेष प्रकारक की दीखती है, जो संसार को भोगता हुआ भी नहीं भोग रहा होता है। प्रकृति में रहकर भी इससे पृथक बना रहता है।

मूल्यमीमांसा

1. वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्य

विवेकी पुरूष समस्त विषयों से विरक्त रहता है और सोने–बैठने, घूमने–फिरने, नहाने, देखने, छूने, सूँघने, खाने और सुनने आदि क्रियाओं में अपने को कर्ता नही मानता बल्कि गुणों को कर्ता मानता है। गुण ही सभी कर्मों के कर्ता भोक्ता है– ऐसा जानकर विद्वान पुरूष कर्मवासना और फलों से नहीं बंधते। वे प्रकृति में रहकर भी वैसे असंग रहते हैं, जैसे स्पर्श आदि से आकाश, जल की आर्द्रता आदि से सूर्य और गन्ध आदि से वायु। उनकी विमल बुद्धि की तलवार असंग–भावना की सान से और भी तीखी हो जाती है और वे उससे अपने सारे संशय सन्देहों को काट–कूठकर फेंक देते हैं। जैसे कोई स्वप्न से जाग उठा हो, उसी प्रकार वे इस भेद बुद्धि के भ्रम से मुक्त हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत् के अनुसार आदर्श मानव शायद समदर्शी वह व्यक्ति है, जो सामाजिक मूल्यों को किसी बनधन या दबाव में नहीं स्वीकारता अपितु विशेष प्रकार के गुणों के अभ्यास से यह ऐसा व्यवहार करता है –

जो समदर्शी महात्मा गुण और दोश की भेद दृष्टि से ऊपर उठ गये हैं, वे न तो अच्छे काम करने वाले की स्तुति करते हैं और न बुरे कोम करने वाले की निन्दा, न वे किसी की अच्छी बात सुनकर उसकी सराहना करते हैं और न बुरी बात सुनकर किसी को झिड़कते ही हैं।

''श्रीमद्भागवत्'' के उद्धत उद्धरणों में काम, अर्थ, मोक्ष तथा धर्म रूप चारों पुरूषार्थों का विषय रूप से प्रतिपादन किया गया है। ''श्रीमद्भागवत्'' में केवल पुरूषार्थों का ही प्रतिपादन नही किया गया अपितु धर्म, दर्शन और शिक्षा का भी सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भागवत् की श्रेष्ठता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसे भारतवर्ष की ही नही बल्कि संसार की अधिकांश ईश्वरभक्त जनता धर्मग्रन्थ के रूप में स्वीकारती है। श्रीमद्भागवत् के विशेषज्ञ आचार्यों के ऐसे ही उद्गारों से प्रेरित होकर प्रस्तुत अनुसन्धानकर्ता ने श्रीमद्भागवत् का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राष्ट्रीय जीवन मूल्यों एवं व्यवहारिक शिक्षा सिद्धान्तों की दृष्टि से श्रीमद्भागवत्पुराण निःसन्देह एक अनुसन्धेय पुराण है। अनुसन्धानकर्ता का विश्वास है कि महर्षि व्यास की रचना श्रीमद्भागवत् में निरूपित

 Copyright 2019.All rights reserved.

जीवनमूल्य एवं शैक्षिक सिद्धान्त स्वतन्त्र भारत के लिए अपेक्षित राष्ट्रीय (भारतीय) शिक्षा प्रणाली के पुर्ननिर्माण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगें।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. वेदव्यास, श्रीमद्भागवत्–सुधा–सागर, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजूकशेन : प्रकाशक, रामप्रसाद एण्ड सन्स हॉस्पीटल रोड़, आगरा।
3. श्री अरवन्दि, भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी, 1988
4. मुकर्जी, राधाकुमुद, एन्सिएण्ट इण्डियन एजूकेशन, मैकमिलन, लण्डन, 1947
5. वेदान्तसागर, (भूमिका)– सम्पादक डॉ. शिवसागर त्रिपाठी प्रकाशन–ज्ञान प्रकाशन, मेरठ।
6. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ : प्रकाशन, विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा।

IJARSE

 Copyright 2019.All rights reserved.